

अर्चना के फूल



□ सत्यपाल "निशिचंत"

अर्चना के फूल

(काव्य संग्रह)

श्री/सुश्री ......मोती लाल रैना...... को
सादर, सप्रेम उपहार स्वरूप समर्पित
सत्यपाल 'निश्चिन्त'
सत्यपाल 'निश्चिन्त'
15, अगस्त 90

□ सत्यपाल 'निश्चिन्त'

उद्योग नगर प्रकाशन
गाजियाबाद

अर्चना के फूल (काव्य संग्रह)

☆ सत्यपाल 'निश्चिन्त'

□ प्रकाशन वर्ष : 2007

□ पृष्ठ संख्या : 64

□ मूल्य : 75/- रु.

प्रकाशक :

उद्योग नगर प्रकाशन
गाजियाबाद

मुद्रक :
नूतन ऑफसेट प्रिंटिंग प्रेस
7, मालीवाड़ा गाजियाबाद

Archana Ke Phool (Poetry) · By : Satyapal Nishchint

आत्मकथ्य

भावों की दस्तक

जिधर भी नजर पड़ती है, ऐसा लगता है कि हमारे आसपास विसंगतियां और विषमताएं हमें घेरे रहती हैं। फिर भी हम अंजान बन कर उनमें उलझते जा रहे हैं। रिश्तों में आपसी संबंधों में भी दरार सी पड़ती जा रही है। भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों का ह्रास और पश्चिमी सभ्यता के दिखावे में भटकना आज की पीढ़ी का शौक बन गया है।

कविता मानव जीवन का संगीत है। कविता जीवन की मौज है। समुद्र की लहरें है। कविता लिखी नहीं जाती। कविता स्वयं ही मन में भाव अंकुरित करके लेखनी हाथ में पकड़ा देती है और स्वयं कविता कागज पर लेखनी के द्वारा उतरती जाती है। और कविता बन जाती है।

मैंने अपने जीवन के सफर में आती जाती छोटी बड़ी घटनाएं, परिवार, समाज में व्याप्त विसंगतियां तथा भारतीय संस्कृति पर भौतिकवाद, आधुनीकरण एवं पश्चिमी करण का बढ़ता प्रभाव देखा है, उसी का प्रभाव मेरी प्रेरणा के स्रोत हैं।

कवि का मन जब भावों से भर जाता है तब प्रेमिका भी देवी का रूप ले लेती है और उसकी पूजा अर्चना करने का, पुष्प अर्पित करने का मन करता है। बस यही मेरी कविता अर्थात् काव्य संग्रह 'अर्चना के फूल' बन गयी है।

सन् १९६६ में जब मैं सेना में सेवारत था तब पंजाब विश्वविद्यालय से प्रभाकर की परीक्षा की तैयारी की थी। तभी से कविता लिखने का बीज मेरे अंतर्मन में उपजा और १९७० में ८–१० कविताएं भी प्रकाशित हो गई। फिर ग्रहस्थाश्रम के झंझावातों में फंसकर उसमें विराम लग गया। अब पुनः सेवानिवृत्ति के बाद, मन में विचार उठा कि इस खाली समय को क्यों न साहित्य सेवा के लिए अर्पित किया जाए। पुत्र ने स्वयं गृहस्थ का भार अपने कंधों पर उठा लिया है तो मैं 'निश्चिन्त' हो गया हूँ। इसी निश्चिन्तता का लाभ उठाकर साहित्य सृजन का कार्य आरंभ कर दिया है। जब अतर्मन में अच्छे सुसंस्कृत विचार उत्पन्न होते हैं तो ईश्वर भी प्रेरणा देकर पूरा सहयोग देता है। उसी परमपिता परमेश्वर की इच्छा एवं प्रेरणा से ५५ कविताओं का यह काव्य संग्रह 'अर्चना के फूल' सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का साहस जुटा पाया हूँ। इसी विश्वास के साथ कि उन्हें मेरा काव्य संग्रह पसंद भी आएगा और मेरी त्रुटियों के निराकरण का सुझाव देकर अनुप्रेरित भी एवं अनुग्रहीत करेंगे।

मैं अपने परम मित्रों, शुभचिंतकों एवं मार्गदर्शकों का जिनमें कैप्टन हेतराम सुधार, डॉ. रीता हजेला 'आराधनां', डॉ. उमा शशि दुर्गा, आदि का अंतर्मन से सदैव आभारी रहूंगा, जिनके द्वारा दी गई प्रेरणा से मैं इस योग्य बन पाया।

-सत्यपाल 'निश्चिन्त'

एफ ६०८, पार्श्वनाथ प्रेस्टिज सैक्टर ९३ए नोएडा–२०१३०१

अनुक्रमणिका

संग्रह में अनुभूतियों की सघनता है



काव्य कला, समस्त कला जगत की उत्कृष्ट उपलब्धि मानी जाती है। काव्य की साधना वास्तव में भाषा द्वारा भाव की साधना है। जो व्यक्ति इस साधना में तल्लीन हो जाता है वह कुछ न कुछ माणिक मोती काव्य रूप में पा ही जाता है। श्री सत्यपाल 'निश्चिन्त' ऐसे ही काव्य साधक हैं। प्रस्तुत काव्य संग्रह 'अर्चना के फूल' इनका प्रथम प्रयास है। इस प्रथम प्रयास में ही उनके काव्य में अनुभूतियों की सघनता, विषय की गंभीरता और विचारों की परिपक्व अभिव्यक्ति सहज ही परिलक्षित होती है। सरस्वती अभिनंदन से आरंभ हुए इस काव्य संग्रह में सम सामयिक घटनाओं, सामाजिक विसंगतियों और पाखंडों पर कवि 'निश्चिन्त' ने बेवाक कलम चलाई है, कवि अपनी साधना के प्रति आश्वस्त होकर कहता है—

मैं गीत गाता रहूंगा/कविता बनाता रहूंगा
जब मैं लोगों के साथ होता हूँ
बातों के बजाय गाना शुरू करता हूँ
और ऊर्जा का अनुभव करता हूँ
संगीत सुन के गाना/एकान्त में गाना
मेरे अहं के गाने हैं।

(मैं गीत गाता रहूंगा)

सीधे सादे शब्दों में बिना किसी बनावट के सहज रूप में अपनी बात कह देना कवि की विशेषता है। छन्द—अलंकार से दूर कवि अपनी बात सरल भाषा शैली में कह देने का अभ्यासी है।

ज्ञान दिलाती है पुस्तकें
धर्म समाज एवं संस्कृति से भी
अवगत कराती है पुस्तकें,
पति बसे परदेश तो बिरहन पत्नी को
'निश्चिन्त' बनाती हैं पुस्तकें।

श्रंगार रस से परिपूर्ण कविताएं लिखने में कवि को सिद्धहस्तता प्राप्त है। एक 'गजल' का प्रयोग कवि ने इस प्रकार किए है–

तू मेरी जान है जहान है तू
हमारे इश्क की पहचान है तू।
भरोसा तोड़ा था, माफ कर दे तू
अब अपने दिल को साफ कर ले तू।
लेकिन थोड़ी सी नादान है तू
फिर भी मेरा तो ईमान है तू। *(ग़ज़ल)*

यों तो कवि का सत्य किसी प्रकार की सीमाओं में बंधा नहीं होता और न घटना विशेष पर आश्रित रहता है। वह एकमात्र मानव भावनाओं पर ही आश्रित रहता है। मानव मन से संबंधित सत्य, प्रवृत सत्य की भांति क्षणिक और स्थायी नहीं होता है वह निरंतर एवं शाश्वत होता है। तभी कवि निश्चिन्त नारी वेदना को व्यक्त करते हुए लिखता है–

आज के सामाजिक परिवेश में
किसी में भी नहीं जाना/नारी की वेदना को।
सभी ने पीड़ा दी है नारी को
विशेषकर नारी ने ही छला है नारी को।

लेकिन नारी समाज निर्मात्री भी है, वह अनेकानेक कष्ट सहकर भी मानव कल्याण में भरपूर योगदान दे रही है। अपनी एक ओर कविता में कवि ने यही भाव इस प्रकार रखा है–

यह सच है कि नारी ही/प्रकृति का अनुपम उपहार है,
वह कहीं माता तो कहीं पत्नी/कहीं बहन है तो कहीं बेटी
नारी ही सृष्टि का अभिन्न अंग है।

यह विदित ही है कि कविता हमारे मन का संस्कार कर परिष्कार करती हुई हमारी रुचि को और उदात्त बनाती है। इसीलिए कविता के प्रभाव को सर्वाधिक व्यापक और शक्तिशाली माना गया है। इस कसौटी पर कवि निश्चिन्त खरे उतरते हैं। यह उनका प्रथम प्रयास है। कुछ काव्यगत चूकें रह जाना स्वाभाविक है फिर भी उनके इस प्रथम काव्य संग्रह को सफल प्रणयन के लिए उन्हें बधाई दी ही जानी चाहिए। भविष्य में वे अधिक सशक्त काव्य रचना हमें दे पाएंगे ऐसी आशा और मनोकामना की जा सकती है।

-डॉ. हरिसिंह पाल
(कार्यक्रम अधिकारी, आकाशवाणी)

जीवन भर के अनुभवों की सुगंध
अर्चना के फूल



'अर्चना के फूल' श्री सत्यपाल निश्चिन्त का प्रथम काव्य संग्रह है। इससे पूर्व उनकी रचनाएं अनेक पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित एवं प्रसारित रही हैं। यद्यपि यह उनका प्रथम काव्य संग्रह है परंतु इसमें उनके जीवन भर के अनुभवों की सुगंध व्याप्त है। इन कविताओं में जहां कवि का व्यक्तित्व एवं जीवन दर्शन सहज ही रूपायित होता है, वहीं समाज भी प्रतिबिम्बित होता महसूस होता है! इन जीवन अनुभवों के कतिपय अनुभव उनके नितांत निजी हैं, कुछ समाज की पीड़ा का पुज्जीभूत रूप हैं तो अन्य आध्यात्मिकता के रस से ओतप्रोत है। इस संग्रह के माध्यम से कवि ने अपनी जिंदगी के प्रत्येक पल को मानों पुनः जीने का प्रयास किया है, उसके हर रंग को संजीदगी के साथ महसूस किया है तथा उसकी सुगंध को पूरी शिद्दत के साथ आत्मसात् किया है। पहले आर्मी में तथा बाद में बैंक में कार्य करते हुए अपने विस्तृत कार्यक्षेत्र से तथा दैनंदिन जीवनचर्या से प्राप्त अनुभवों–पुण्यों को इस काव्य संग्रह में सजाने का कुशल प्रयास किया है।

'निश्चिन्त' जी एक सरल हृदय, संवेदनशील, निश्छल, आशावादी, परंपरा प्रेमी एवं उत्साही व्यक्ति हैं। अपने जीवन को निश्चिन्तता के साथ जीते हुए उन्होंने वाणप्रस्थ के सत्यस्वरूप को परिभाषित किया है। पूरे आत्मविश्वास के साथ, आशा का दामन थामे उन्होंने जीवन की प्रत्येक सम–विषम परिस्थिति का सामना किया है और इन्हीं कटु–मधुर स्मृतियों को काव्य–संग्रह के रूप में समाज के साथ बांटने का उनका संकल्प निश्चय ही स्तुत्य है।

'अर्चना के फूल' काव्य संग्रह अपने नाम से ही पवित्रता का अहसास करवाता है। जैसे भक्त भगवान की पूजा के लिए रंग–बिरंगे सुंदर एवं सुवासित पुष्पों को पावनता से और संजो कर लाता है, ठीक उसी प्रकार कवि अपनी भावनाओं और संवेदनाओं को पूरी सच्चाई के साथ समाज के प्रति अर्पित करता प्रतीत होता है।

प्रस्तुत काव्य–संग्रह में संग्रहीत कविताओं में विभिन्न मनोभावों का सुंदर प्रस्फुटन हुआ है। कवि का भाव–प्रवण ह्रदय जगत के दुखों से द्रवित हो जाता है, वह अपनी कविता के माध्यम से जगत के दुख–दर्द को कम करना चाहता है। कवि का कथन है कि यदि उसके गाए गीत पृथ्वी के ह्रदय को प्रफुल्लित कर सकें अथवा उसकी आंख के आंसू किसी एक की व्यथा भी कह सकें तो वह गीत भी सुना देगा, आंसू भी बहा देगा।

आज मेरे गाए गीतों ने
यदि वसुंधरा को प्रफुल्लित कर दिया
मेरे नयनों के दो आंसुओं ने
यदि इक व्यथा को उल्लिखित कर दिया
मैं अश्रु भी बहा दूंगा,
मैं गीत भी सुना दूंगा।

कवि नैतिक मूल्यों, परंपराओं और संस्कारों को बहुत महत्व देता है। समाज में इनका पतन देख कर वह चिंतित है। उसके अनुसार यदि मनुष्य सच–झूठ का अंतर समझ ले, और अपना लक्ष्य निर्धारित कर ले तथा पूरी ईमानदारी से उसे उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे तो निश्चय ही उसकी भटकन समाप्त होगी और वह सफलता प्राप्त कर सकेगा। कवि जगत की नश्वरता को देखकर चाहता है कि मृत्यु से पूर्व वह ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सके–

यह शरीर नश्वर है सबका
मत भोग–विलास में लिप्त रहो
हैं मृत्यु यहां निश्चित सब की
ममता माया से रिक्त रहो।

एक ओर जहां कवि आध्यात्मिकता की बात करता है वहीं दूसरी ओर कभी वह एक प्रणयी का ह्रदय लेकर अपनी प्रेयसी को रिझाते–मनाते हुए नजर आता है तो कभी उसका विरहकुल ह्रदय प्रिया के वियोग में तड़पता नजर आता है–

पूछता हूँ तुमसे क्यों यह नाटक किया था,
'उर मिला' कर उर में अजीब दर्द दिया था।
डरती हो बदनामी से धनी पति को पा अब–
निरधन के अरमानों से खिलवाड़ क्यों किया था।।

अथवा

अच्छा हुआ जो तुम मुझे तब मायूस कर गये,
सहकर तेरे जुल्मो सितम हम खामोश रह गये।
गमे दिल की आवाज सुन गीतों में तू 'निश्चिन्त'
मेरी सूखी अंखिओं को आंसुओं से भर गये।।

एक सामाजिक प्राणी होने के नाते कवि समसमयिक समस्याओं से अछूता नहीं

रह सकता। कवि भी समाज में बढ़ते पाश्चात्य संस्कृति के आधिपत्य को देखकर चिंतित है। वर्तमान युग में नारी की स्थिति को देखकर उसका हृदय वेदना से भर उठता है। नारी को उसकी प्राचीन गरिमा और महिमा से मंडित देखने के लिए उसका हृदय व्याकुल है। नारी समाज की निर्मात्री, विलक्षण नारी तुम गृहलक्ष्मी हो, इसी मन्तव्य की कविताएं हैं।

इसके अतिरिक्त मेरा गांव, पुस्तकें, छोटे बच्चे भी इस संग्रह की उल्लेखनीय कविताएं हैं। समग्रतः यह कहा जा सकता है कि भाव और भाषा की दृष्टि से 'निश्चिन्त' जी का यह प्रथम प्रयास निश्चय ही सराहनीय है। ऐसा नहीं है कि कविताएं मात्र कल्पना की सतह पर हैं। रचनाएं जीवन के कटु सत्य को छूती है। संग्रह बहुत ही उत्तम बन पड़ा है। सुधी पाठकों को अवश्य ही पसंद आयेगी उनकी यह काव्य कृति।

संग्रह 'अर्चना के फूल' की कविताएं एक पुष्प की भांति अपने रंग और सुगंध से कविता प्रेमी—भ्रमरों को अपनी ओर आकृष्ट करेंगी। एक सुंदर काव्य संग्रह के लिए मेरी ओर से हार्दिक बधाई। भविष्य में भी उनकी रचनाएं संग्रह का रूप धारण करती रहेंगी, ऐसी हार्दिक शुभकामना के साथ –

-प्रो. मुक्ता अरोड़ा
प्रवक्ता हिन्दी विभाग,
देव समाज कालेज फॉर गर्ल्स, अम्बाला शहर, हरियाणा

सरस्वती अभिनंदन

मां सरस्वती तुम्हारा अभिनंदन।
पूज्यवरा विद्यादायिनी तुझे नमन।।
मां अपनी कृपा दृष्टि से बनातीं,
ज्ञानवान, बुद्धिमान, विवेकवान।
अनुसाशित, संयमित, प्रगतिशील बनाती–
करती आलोकित, तुम्हें शत शत नमन।।
महाविद्या, महावाणी, वीणापाणि,
शारदे, बिखरा दो ज्ञान पुंज धरा पर।
बना उपासक को निष्कलंक, चरित्रवान,
हे सरस्वती मैं, तुमको करता नमन।।
साहित्य संगीत कला की अधिस्ठाथी,
दिग्भ्रमित को सन्मार्ग पर लाकर–
सम्पन्न, सुखी, सुविकसित बना दे मां,
वीणा वादिनी वर दे, तुझे है नमन।।
ऋतुराज वसन्त के शुभ आगमन पर
प्रकृति पुष्पित, पल्लवित औ सुरभित।
श्वेतांभरा, वीणा, पुस्तकधारिणी–
ज्ञानं कला की देवी, मां तुझको नमन।।

□

तेरी यादें

तेरी यादें मेरे साथ सदा
सुख का आभास देती हैं।
तुझसे मिलने की
फिर से आस देती हैं।।
मगर मेरा दुर्भाग्य ही तो है
तुम ऐसी अन्तर्ध्यान हो गयीं
कभी लौटकर न आने को
कि अकेली स्वर्ग का वास हो गईं।
फिर भी तेरी याद में
जी रहा हूँ मर—मर के
कि पुनर्जन्म में मिलन की आस हो गयी
तेरा ममतामयी प्रेम
जीवन भर जो मिला मुझे
तेरी यादों के सहारे
अब तक जी रहा हूँ मैं
क्या तुझे भी इस तरह
कभी याद आ रहा हूँ मैं।

□

अनुरोध

मन व्यथित हुआ एक पीड़ा से
जब भाव ह्रदय में उदित हुआ।
यह जगत मनोरम रंग मंच—
लख सत्य ह्रदय में मुदित हुआ।।
यह रंगमंच तो है लेकिन
नहिं अभिनय करते अभिनेता।
मनुज बन कर्मयोगी इस पर—
सत्यकर्म करने का प्रण लेता।।
यह शरीर नश्वर है सबका
मत भोग—विलास में लिप्त रहो।
है मृत्यु यहां निश्चित सबकी—
ममता माया से रिक्त रहो।।
हे प्रभु यही इच्छा मेरी
मृत्यु से पहले जान सकूँ।
इस सार हीन जगती भर में—
केवल सच ही पहचान सकूँ।।
धर्म कर्म से अवगत होकर
मन पुण्य कर्म में लगा रहे।
प्रभु केवल तुझको जान सकूँ—
'निश्चिन्त' मन तुझमें बसा रहे।।

अन्तर्द्वन्द

मन बड़ा चंचल है,
जाने कहा–कहां भटकता है, हर समय रहता है अन्तर्द्वन्द।
कैसे–कैसे विचार मन में डेरा डाल लेते हैं।
अधिकतर विचार नकारात्मक होते हैं,
बुरे विचार ही हमारी सुख शांति के शत्रु हैं
सकारात्मक विचार ही हमें रास्ता दिखाते हैं।
हम खाना हाथ–मुंह से खाते हैं।
मन से नहीं,
सोते है शरीर से, मन से नहीं,
मन कहीं और भटकता रहता है।
अगर मन एकाग्रचित्त हो जाये
तो हम ईश्वर भक्ति में,
लीन हो सकते हैं।
जो मन को नियंत्रित कर ले,
वही परमपिता परमेश्वर के
सबसे निकट है।
सांसारिक झंझटों से छुटकारा
पाने का मार्ग है, मन का नियंत्रण।
अगर मन नियंत्रित हो गया
समझो ईश्वर में लीन हो गया।
बंधुओं मन को नियंत्रित करो,
ईश्वर में लीन हो जाओ,
सभी झंझटों से मुक्त हो जाओ।
'निश्चिन्त' हो जाओगे।। ◻

पथिक

मैं हूँ लक्ष्यहीन पथिक
खोजते–खोजते भटकता रहता हूँ
रात दिन एक लक्ष्य के लिए।
नहीं मिलता कोई राही
जो पहुंचा दे मुझे
उस अनन्त अपार निराकार के पास
अब तक मुझे मिले सभी
स्वयं भटकते हुए
सोचता हूँ जो खुद ही
भटका हुआ है
मुझे भी बना देगा लक्ष्यहीन।
जीवन है कंटकमय
आते है संकट बहुत
फिर भी मैं सुनता हूँ
आवाज आत्मा की
और पाता हूँ स्वयं को
अग्रसर उस लक्ष्य की ओर।

❑

वक्त

वक्त तुझे क्या हो गया है,
सदा बदलता रहता है,
आदमी को जानवर बना देता है।
औरत को मर्द,
जो आदमी को कमाकर खिलाती है,
तमाम सहकर दर्द,
वक्त गरीब को अमीर और अमीर को गरीब बना देता है।

तेरे ही कारण रावण तक ने,
गधे को बाप बना लिया था।
आज गधे जैसे आदमी को भी,
बाप बनाना पड़ जाता है।

तेरे मिजाज भी अजीब हैं,
चोर, उच्चक्के और लुटेरों को,
तू मंत्री बनाकर,
तोप और चारा तक खिला देता है।

भारतीय संस्कृति बिगाड़ कर,
तूने पाश्चात्य संस्कृति का बिगुल बजा दिया है।
अरे वक्त इंसान को हैवान मत बना,
कम से कम रिश्तों का लिहाज तो रहने दे।
जिससे औलाद बाप को बाप कह सकें
बुजुर्ग 'निश्चिन्त' होकर बची हुई जिंदगी गुजार सकें।।

ऐ वक्त जरा सम्भल,
और बदलना, बिगड़ना छोड़ दे,
तुझे शत् शत् प्रणाम।

◘

आस्था

आस्था हो तो
नरक भी स्वर्ग बन जाता है।
प्रयागराज इलाहाबाद में
अर्धकुम्भ के मेले में
श्रद्धालुओं की आस्था
चरम सीमा पार कर गई।
आतंकवादी धमकी बे–असर हो गई
कड़ाके की ठंड भी न कर पाई
अटूट आस्था भंग
धार्मिक उद्‌घोषों से
भक्तिमय हुआ माहौल
सूर्य के मकर राशि में प्रवेश करने से
मकर संक्रांति त्यौहार मनाया गया
कड़ाके की सर्दी के वावजूद
लाखों श्रद्धालुओं ने लगाई
गंगा मईया के जल में डुबकी
संगम का माहौल हुआ भक्तिमय
ऐसी आस्था केवल
भारतवासियों में ही हो सकती है।
धन्य भारत देश और यहां के निवासी
हर झंझटों से मुक्त
हर दुखों से 'निश्चिन्त'
अटूट आस्थावादी हैं भारतवासी।

माँ

माँ सचमुच ही आज,
स्वयं माँ बनने के बाद
मुझे माँ का अर्थ ज्ञात हुआ है,
जिसे मैं अब तक समझ नहीं पायी थी।
माँ पूरे परिवार को अटूट बंधन में,
बांधने वाली एक सुदृढ़ डोर होती है।
सभी के सुख दुख का भार
जीवन भर ढोने का नाम
ही तो माँ है।
यह मैंने आज जाना है,
स्वयं माँ बनकर ही।
सहनशीलता, कर्मठता,
त्याग भावना स्वयं के लिए
कुछ न चाहना ही तो
असली माँ का स्वरूप है।
जीवन पर्यन्त सभी को देना
किसी से कुछ न मांगना,
संतोषम् परम् सुखम् का भाव
मन में रखना ही, माँ की पहचान है।
जिसे मैं आज तक न जान पाई।
आज स्वयं माँ बनने के बाद
माँ का असली रूप जान पाई हूँ।
हे माँ, मुझे भी अच्छी माँ बनने का
आशीर्वाद दो।
जिससे तुम्हारी तरह मैं भी
सच्चे मन से माँ का कर्तव्य
निभाकर 'निश्चिन्त' जीवन जी सकूं। □

माँ की आंखें

हर रोज मैं देखती हूँ
चुप रहती हूँ।
पूछती हूँ खुश रहते हो
तुम कहते हो, हाँ
इस 'हाँ' का मतलब तुमसे ज्यादा
मैं समझती हूँ।
क्योंकि मैं तेरी माँ हूँ।
आंखें झूठ नहीं बोलती
मैं आंखों से तेरा मन
टटोल लेती हूँ।
तू समझता है मैं अनजान हूँ।
इन आंखों में तेरा एक–एक दर्द
समेटे बैठी रहती हूँ,
क्योंकि मैं तेरी माँ हूँ।
तू आगे बढ़ रहा है, मैं खुश हूँ
पर झूठी मुस्कान तेरा
हर राज खोल देती है।
मेरा आशीष तू आगे बढ़
पर कल्पनाएं मत गढ़
मन को मजबूत कर ले।
सत्य का दामन थाम ले।
मुझे सच्ची मुस्कान दे दे
क्योंकि मैं तेरी माँ हूँ।
और तू मेरी आंखों का तारा है।

□

स्वर्ग की तलाश में

आश्चर्य हुआ,
उस जनसमूह को देख
कि क्यों यह
दिन रात, सुबह शाम
चलता रहता है,
बसों में, रेलगाड़ियों में,
तांगे रिक्शे कारों में,
उससे भी अधिक
पैदल पथ पर !
सभी अग्रसर हैं
एक अनजाने पथ पर
समझ से परे है,
इन कलियुगी मनुजों
का लक्ष्य क्या है?
सभी दौड़ रहे हैं,
जैसे कहीं कोई
पुण्य लुट रहा हो
और वे
विलंब के डर से
दौड़ रहे हैं।
भला इस कलियुग में
जहां पुण्य जैसी कोई वस्तु उपलब्ध नहीं,
कौन इस अलभ्य वस्तु को
छोड़ना चाहेगा।
लगता है स्वर्ग की तलाश में ही
सभी दौड़ रहे हैं,
अपलक
हरिद्वार की ओर।

भटकन

हर कोई भटक रहा है,
लक्ष्य पाने के लिए
लेकिन,
किसी को पता ही नहीं
कि उसका लक्ष्य क्या है?
सभी जी रहे हैं, भटक रहे हैं
लक्ष्य विहीन होकर।
पहले लक्ष्य निर्धारित करो,
फिर आत्मिक लगन से जुट जाओ
लक्ष्य पाने के लिए।
कोई कारण नहीं कि लक्ष्य प्राप्त न हो
यह अमिट सत्य है
कि जो स्वयं की मदद करता है
उसकी स्वयं ईश्वर भी मदद करता है।
सो जुटे रहो सच्चे मन से
'निश्चिन्त' होकर
लक्ष्य पाने के लिए।

मेरा जीवन

मेरा जीवन, कैसा जीवन,
नीरस जीवन, धूमिल जीवन।।
जीवन का लक्ष्य अधूरा है,
ना इसमें सांझ सवेरा है।
लगता अभाव ने घेरा है–
चलता फिरता ये बसेरा है।।
मैंने चाहा हंसकर जीना,
पाया लेकिन आंसू पीना।
दफनाया है अरमानों को–
दुनिया ने सब कुछ ही छीना।।
सब भुला यही अब इच्छा है,
ऐ मृत्यु तेरी ही प्रतीक्षा है।
लगता वह दिन है दूर नहीं–
जब अंतिम मेरी परीक्षा है।।
हे प्रभो अगर जीने दे तू,
मत निष्ठुरता से तड़फा तू।
'दुश्चिन्ताओं' से मुक्ति दिला–
'निश्चिन्त' बना दे मुझको तू।।

□

उन्मुक्त यौवन

क्यों अभिमान तुम्हें यौवन का
क्षण में पता नहीं इस तन का
हाड़–मांस का पुतला है यह–
सुन्दर पतझड़ है उपवन का।

कैसे कब मुरझा जाये ये
कहना, सुनना दुष्कर है ये
मत मान करो सुन्दरता का–
ईश्वर तुमको सद्‌बुद्धि दे।।

सुंदर विचार भर लो मन में,
सब कुछ नश्वर है इस तन में
आत्मा की ही शुद्धि करके–
सुगंध बिखरा दो जन–जन में।

तन यौवन का मोह छोड़कर
दूषित मन का जाल तोड़कर
'निश्चिन्त' करो सेवा जन की–
भव्य भावना ह्रदय जोड़कर।

◻

नश्वर यौवन

हर्षित क्यों होती सुकुमारि,
देख अपने यौवन का भार,
ह्रदय में रख तू ऐसे भाव–
चंद्रिका रहती है दिन चार।
गति के साथ हुआ सब भस्म,
न होंगे रीति रिवाज व रस्म,
व्यर्थ क्यों यौवन का अभिमान,
न होंगे जब अनुराग व कस्म।
न पूरा हुआ कभी अभिमान,
तुझे जो है यौवन का मान,
प्रौढ़ता पर होगा जब भान
व्यथित होगी तब लख अज्ञान।
पड़ेगी नश्वरता की छाप,
याद आयेंगे पिछले पाप
समझ जायेगी स्वयं को आप
अब बढ़ती चल चुप–चाप।
भक्ति ईश्वर की में हो लीन,
प्रतीक्षा आशाओं की छीन,
करो अब जीवन में निश्चिंत–
मृत्यु के हैं पग केवल तीन।

मेरा यौवन

मेरा यौवन अब बीत चुका
लगता जीवन ही रीत चुका।
फिर भी यह कह सकता हूँ अब–
मैं हारी बाजी जीत चुका।।

यौवन का प्रथम चरण था जब,
उन्मुक्त पवन का झोंका था।
मंडराता फिरता कलियों पर–
सुन्दर सपनों का मौका था।।

बस यही लालसा थी मन में,
मन चाहा पराग लूट सकूँ।
वह उपवन और निकुंजों में–
निर्झर झरना सा फूट सकूँ।।

मद–मस्त लहरता राहों पर,
जी उठता प्रिय की चाहों पर।
खेला करता घन केशों से–
झूला करता प्रिय बाहों पर।।

यौवन के संग सब बीत गया,
न अब प्रेयसि है न प्रेम प्रीत।
स्वारथ के ही सब साथी हैं–
है यही जगत की अमिट रीत।।

अभिनय जग का अभिनीत हुआ,
है हुआ ज्ञान का भान अभी।
जन के यौवन के आकर्षण–
है मिथ्या, मोह, अज्ञान सभी।।

जय बांगला

निकल बालाओं बच्चों बूढ़ों पर
इस बेरहमी से अत्याचार कर।
देख याहिया तेरी अमानवता–
विश्वास उठ गया है इस्लाम पर।।

हर्ष निषाद से परे निर्लिप्त मन,
अनिश्चित लक्षमय निर्जीव सा तन,
क्या मिल गया तुझे अरे निर्मोही–
जो बर्बाद कर दिया बंगला चमन।

भावनाएं उदित हैं प्रतिशोध की
याचनाएं कुंठित हुई अनुरोध की
स्वजनों की लख दुर्दशा वीभत्स–
खुल गई हैं बंद अंखियां बोध की।

जान की बाजी लगा अब लड़ रहा
रुधिर मेरा धमनियों में चल रहा
मुक्ति सेना का बन मैं सेनानी–
बंगला देशोद्धार को हूँ लड़ रहा।

चखा सकूं मजा तुझे इस पाप का
फल मिल जाय निरीहों के शाप का
अब तो यही सोचता हूँ मैं 'निश्चिन्त'
घड़ा भर चुका है तेरे पाप का।

सैनिक को

ओ भारत के सैनिक महान,
मत पीठ दिखाना रण–स्थल में,
बलिदान अगर होना ही पड़े–
उत्सर्ग होना रण स्थल में।
क्यों सोच तुझे निज बच्चों का,
प्रभु रक्षा करता सच्चों का,
मत भूल जगत के नर–नारी
सम्मान हैं करते अच्छों का।
मत पाल मोह अन्तर में तू,
मत ममता को तू गले लगा,
बन वज्र बढ़ा चल निज पथ पर–
यह लगे बुरा या लगे भला।
रख याद सदा संकल्पों को,
देश की खातिर जीना तुझे,
मत बुझने दे अरमानों को–
हाँ जीवनदीप भले ही बुझे।
मत घबराना बाधाओं से,
यह जीवन पुष्पों का पंथ नहीं,
रक्षा करना भारत माँ की–
'निश्चिन्त' जीवन का अंत नहीं।

□

ललकारों का आह्वान करो

ऐ प्रिय किया है प्रेम मुझे, अब भारत माँ को प्यार करो।
पाया तुम को बस प्रेम मूर्ति, अब थोड़ा सा पाषाण बनो।।

ये पड़ोसी ढा रहा जुल्म बहुत, कश्मीर की माता बहनों पर,
भारत का दाया अंग सुनो, कटवाता जिन सैनिकों पर,
बन मानवता का दुश्मन वह, कर रहा विनाश हमारे घर का–
है ज्ञात उसे सब कुछ फिर भी, बन रहा निशदिन निशाचर सा।।

डरते हैं पड़ोसी देश सभी, भारत के वीर जवानों से,
कई–कई बार हैं हार चुके, आजादी के दीवानों से।
अब तो तुम हो कर रहे मदद, कश्मीरी अपने अनुजों की–
चाहता पड़ोसी है देखो, खाल उधेड़ना सज्जनों की।।

कश्मीर की अपनी जनता को, मत ठुकराना तुम कभी प्रिये,
जीवन भी बलि हो जाये अगर, मत घबराना तुम कभी प्रिये।
है विनय मेरी यही तुमसे, 'निश्चिन्त' हो करना धर्म कर्म–
कश्मीर की प्यारी जनता को, जतला देना तुम सत्य मर्म।।

यदि फिर भी कोई ललकारे, ललकारों का आह्वान करो,
पाया तुमको बस प्रेम मूर्ति, अब थोड़ा सा पाषाण बनो।।

□

पत्नी का सैनिक पति को पत्र

पतिया पा मन झूम उठा, गद–गद हो गया गात री,
प्रियतम कैसे पहुंचाऊँ, मैं निज मन की बात री।
माना तुमको देश प्रेम, पर मैं तो प्रेम पियासी,
मधुर याद में जलती रहती, वाती और दियासी,
निज प्रेम पुष्प मुरझाकर, है पड़ा हुआ बंधन में–
सोचा था कुछ पा लूंगी, पर रहती सदा उदासी।।
विरह वेदना बढ़ती रहती, सह न सकूं आघात री।
प्रियतम कैसे पहुंचाऊँ, मैं निज मन की बात री।।
हृदय हिलोरें लेता हर दम, प्रिय तेरी यादों में,
पर विश्वास नहीं हो पाता, पत्रों के वायदों में,
मैं मछली सी तड़फूँ निशदिन, तुम बिन यहां अकेली
निज सजनी को यूं तड़फाना, कहां लिखा कायदों में।
कजरारी अंखियों में प्रियतम, होती निज बरसात री।।
प्रियतम कैसे पहुंचाऊँ, मैं निज मन की बात री।।
तुम जी लेते होगे पर मैं, कैसे समय गुजारूँ,
भूल मुझे जाते हो तुम, मैं कैसे तुम्हें बिसारूं,
मेरा बस एक सहारा तुम, कैसे जिऊँ जीवन को–
है कठिन समस्या अपनी, मैं कैसे इसे विचारूँ।
दिन तो कट जाता है पर, तड़फाती बैरिन रात री।
प्रियतम कैसे पहुंचाऊं मैं निज मन की बात री।।
बांध सबर का टूट चुका, और न अब सहा जात री,
रातें लम्बी हो जाती हैं, होता नहीं प्रभात री,
कैसे तुमको सुध आई, समझ न आयी बात री–
समझी थी तुम भूल गये पर निकली यह घात री।
पतिया पा मन झूम उठा, गद–गद हो गया गात री,
प्रियतम कैसे पहुंचाऊँ, मैं निज मन की बात री।।

आज कल

आज कल,
देश, समाज, संस्कृति की
हर बात बंटाधार हो रही है।
हर घर में, प्यार की जगह
तकरार हो रही है।
हर तरफ फैशन के नाम पर
नग्नता साकार हो रही है।
हर जगह देशी वस्तुओं की जगह
विदेशी वस्तुओं की ही
भरमार हो रही है।
जहां देखो, मातृभाषा हिन्दी की जगह
अंग्रेजी की शुमार हो रही है।
विवाह बंधन के स्थान पर
'लिविंग टूगैदर' स्वीकार हो रही है।
कश्मीर में ही देखो, आतंकवाद की घबराहट
बेकार हो रही है।
देश में हर पार्टी की सरकार
भ्रष्टाचार के ही कारण
बेकार हो रही है।
हां, बस नारियां ही केवल
हर क्षेत्र में, अवश्य पुरुषों की मददगार हो रही हैं।
सो, भाईयों आज कल हर बात
बंटाधार हो रही है।

◻

मेरा गांव

याद आई है इस शहर में
बहुत दिनों के बाद।
दादा–दादी, चाचा–चाची, बुआ की,
सुबह के प्रणाम करने से मिलने वाली दुआ की,
फिर बगीचों में साथियों के साथ धमाचौकड़ी की
याद आई है इस शहर में,
बहुत दिनों के बाद।
सुबह–सुबह झुंड, गायों के काफिले की,
कुएं से जाती पनिहारिनों की टोली
मुस्कराती, इठिलाती, बतियाती
ब्रज की नई नवेली
तेरे नौकरी से कब लौटेंगे, पूछती हैं आपस में मिलकर सहेली
उन सभी की याद आई है, बहुत दिनों के बाद
मकई की रोटी, चना का साग
लोटा भरकर सुबह–सुबह छाछ,
साथ में गुड़ की डली, लगती थी बड़ी भली
आज फिर याद आई है इस शहर में
बहुत दिनों के बाद।
इस शहर में कोलाहल है, शांति नहीं
भौतिकता है, आत्मीयता नहीं
स्वार्थ है, निःस्वार्थ नहीं, अपनापन नहीं
सभी व्यस्त हैं, बिना काम के
किसी को थोड़ा सा बतियाने का, कुशलक्षेम पूछने का
समय नहीं, समाधान नहीं
सो मुझे याद आई है गांव की
इस शहर में बहुत दिनों के बाद।

देखते-देखते

जमाना कितना वदल गया, देखते देखते।
उजाला अंधेरे में वदला, देखते देखते।।
मातृभाषा हिन्दी की, दुर्दशा हो गई।
अंग्रेजी राज करने लगी, देखते देखते।।
नारी स्नेह ममता की, मूरत थी प्यारी।
आज रणचण्डी बन गई, देखते देखते।।
पश्चिमी फैशन ने जोर, पकड़ा है इतना।
लाज नंगी हो गयी, देखते देखते।।
नई शिक्षा ने इतना जोर, पकड़ा है देखो।
वेटा वाप का वाप बन गया, देखते देखते।।
मार खाकर भी पड़ोसी, हमारा वार–वार।
हमें आंखें दिखाता है, देखते देखते।।
जिधर देखो है अंधेरा, फैला चारों तरफ।
संस्कृति लुप्त होने लगी, देखते देखते।।
पूरे जहां में नहीं कोई, 'निश्चिन्त' बंधुओं।
लुट रहे निज बसेरे, देखते देखते।।

कविता सरिता

आज मेरे गाए हुए गीतों ने,
यदि वसुंधरा को प्रफुल्लित कर दिया
मेरे नयनों के दो आंसुओं ने,
यदि इक व्यथा को उल्लिखित कर दिया
मैं अश्रु भी बहा दूंगा !
मैं गीत भी सुना दूंग ा!!
मुझे प्राप्त पुष्प की प्रीत ने,
हृदयान्तर में प्राण उभार दिया !
नभ में विलीन मेरे उस तारे ने
मुझे ज्योतिर्मय भी कर दिया !
'उसको' देखता रहूंगा !
'प्रीत' निखारता रहूंगा !
जग की इस अजीबो–गरीब रीत ने,
ऐसा ही यह जग कहा जो अगर !
ऐसा मेरी शुभ कविता सरिता ने,
किसी मनुज को भी कुछ कहा जो अगर
मैं कविता भी लिख दूंगा !
सरिता भी बहा दूंगा !

मैं गीत गाता रहूंगा

मैं गीत गाता रहूंगा
कविता बनाता रहूंगा।
जब मैं लोगों के साथ होता हूँ
बातों की बजाय गाना शुरू करता हूँ।।
और उसी ऊर्जा का अनुभव करता हूँ
संगीत सुन के गाना,
एकान्त में गाना
मेरे अहं के गाने हैं।।
इसलिए लोगों के साथ गाता हूँ
और अहं को मन से मिटाता हूँ।
संपर्क को देख गुनगुनाता हूँ।
जब गुरू के पास होता हूँ
तो हर प्रश्न भूल जाता हूँ,
मौन रहकर आत्मा से
संपर्क बनाता हूँ।
इसलिए मैं गीत गाता हूँ
'निश्चिन्त' कविता बनाता हूँ।।

मुझे अपना बना लो

जब से तुम्हें देखा है,
तुमसे मिलने को, अपना बनाने को
मन बेचैन है।
तुम भी मुझे चाहती हो, पता नहीं
मैं स्वयं को तुम्हारे बिना
अकेला पाता हूँ।
मुझे राह दिखा दो, मिलन की,
क्योंकि बिछुड़न मैं सह न पाऊंगा
मुझे देखकर तुम्हारा, नजरें झुकाना,
फिर बार–बार मुस्कराना,
मिलन की कुछ आस दिलाता है।
इसी आशा के बल पर
तुमसे मनुहार है,
मुझे अपना बना लो प्रिये।
मैं 'निश्चिन्त' हो जाऊँ।
तुम भी 'निश्चिन्त हो जाओ।'

अपरिचिता को

ओ अनजानी, सुमधुरी, सुभासिनी,
तुम बढ़ती जाओ, प्रगति पथ पर,
ईश्वर प्रदत्त सुरभि को, बरसाओ,
बिखराओ, छिड़काओ, जगति भर पर।।

मानवता के नाते, की सेवा जो,
हृदय हुआ है मुदित, तुम देवी हो,
है परे कल्पना से, ऐसा क्यों लगा–
लगता अपार शक्ति ने ही यह किया।।

लगता है तुम सुरभित नाइटिंगल हो,
यदि नहीं तो मेरी इच्छा है यही,
वैसी ही बनकर तुम, इस जग भर को,
दिखला देना, समय बदला, नारी नहीं।।

मानव सेवा परमधर्म है बिन लालच के,
कर्तव्य पथ पर सच्चे मन चलना अच्छा है,
'निश्चिन्त' करो सेवा, मानव की जग में–
जीवन के क्षण अनमोल मगर कम हैं।।

कुसुम (पुष्प) को

दिल दुखी देख दुर्दशा तेरी,
करूं व्यक्त कैसे व्यथा मेरी।

तोड़ तुझे डाल से मसल दिया,
मरोड़ गात तेरा, कुचल दिया,
फैंका फिर जमाने के पथ पर–
पदों को धूल में धकेल दिया।।

न पाकर डाल पर उस दिन तुझे,
अरमा माली के होंगे बुझे,
पहले रोया होगा दिल थाम–
फिर खूब कोसा होगा मुझे।।

हाय क्या करूं मैं मजबूर था,
इस जगत का यही दस्तूर था,
जग विकल लख खुशियां किसी की–
बता फिर मेरा क्या कसूर था।।

जोशो जवानी में होकर अंधा,
तब काम कर डाला गंदा,
अब जान कर गलती अपनी–
शर्मिंदा यह नासमझ बन्दा।।

आ धेरती जब रैन अंधेरी,
नहीं रह पाता हृदय 'निश्चिन्त'
दिल दुखी देख दुर्दशा तेरी–
करूं व्यक्त कैसे व्यथा मेरी।।

□

तुम कब आओगे

कितने दिन हुए,
तुमसे मिले हुए,
तुम कब आओगे—
फिर तो ना जाओगे।
दिन तो कट जाता है,
इधर—उधर भटककर,
रातें नहीं कटती—
इतना तड़पाओगे।
तुम फिर कब आओगे।।

बीती बतियां याद कर,
सारी रातें जागकर,
बिन सोए सपने देखूं—
आकर गले लगाओगे।
तुम फिर कब आओगे।।

मन का प्याला रीत चुका,
सारा सावन बीत चुका,
विरहन प्यासी सावन में—
कब आकर प्यास बुझाओगे।
तुम फिर कब आओगे।।

कितने दिन हुए,
तुमसे मिले हुए,
'निश्चिन्त' तुम कब आओगे।
प्रियतम फिर तो ना जाओगे।।

□

अर्धांगिनी बन जाओ न

हे प्रिये, हे पाषाणी क्यों मूक तुम
अपनी व्यथा मां से कह भी दो ना।
प्रिये मैं जीवन पर्यन्त साथ निभाऊंगा
तुम मेरी अर्धांगिनी बन जाओ ना।।

जब से तुम रूठी हो, लगता मधुमास ही रूठा,
लगता धरा पर आने को, आकाश भी रूठा–
सहारा दोगी तुम तो, उदासी भाग जाएगी।
बहारें जिंदगी में फिर, हमारी लौट आएंगी।।

तृप्त रेगिस्तान चाहे–
प्रिये तुम्हारा स्नेह सावन,
मैं करता परिणय आवेदन।।

व्यर्थ मैंने योग्यता को, अपनी आंका बहुत,
और जीवन जगत में, पैंठ कर झांका बहुत,
इस भरे संसार ने हर प्रेम का संकल्प लूटा।
स्नेह का अभिशाप पाकर, विवश हो विश्वास टूटा।।

अश्रु के घन रात भर बरसें,
न भीगा किंतु मेरा तन बदन,
करो अर्धांगिनी बन समायोजन।

हम प्रिये 'निश्चिन्त' से थे, सफलता की आस में,
पर बदल डाला तुम्हीं ने, विश्वास को निश्वास में,
हम तुम्हारे ही तो अब, सबल आधार होंगे–
कल्पनाओं के महल अब, सभी तैयार होंगे।।

पाकर तुम्हारा शुभ आलिंगन,
तृप्त हो जायेगा मेरा तृषित मन–
प्रिये जोड़ लो जीवन पर्यन्त बंधन।
मैं करता तुमसे परिणय आवेदन।।

उनको मनाऊँ कैसे

वो रूठ गये हैं हमसे, उनक: मनाऊँ कैसे,
दिल में भरा है अभिमान, अद पास जाऊँ कैसे।

सोचती हूँ कहीं खुद ही, न आ जाएं पास मेरे
बस इसी पेशकश में है उनकी मधुर याद घेरे
देखकर सामने उन्हें, खिलती हूँ कुसुम जैसे–
दिल में भरा है अभिमान अब पास जाऊँ कैसे।

देखा जो उन्हें गौर से, पाया बड़ा मायूस,
दिल धक से हाय रह गया, अनुभव हुआ अफसोस,
लख विकल बेबसी उनकी, पिघली मैं मोम जैसे–
दिल में भरा है अभिमान अब पास जाऊँ कैसे।

अभिमान दूर हुआ, मिट गयी इक व्यथा सी
'निश्चिन्त' हो मैं हार के, लिपट गई इक लता सी
फिर मिलन के आंसुओं की, बहा दी सरिता जैसे–
वो रूठ गये हों तुमसे, उनको मनाओ ऐसे।

◻

मत देख जाम की ओर प्रिये

पीने दे मुझको थोड़ी सी
मत देख जाम की ओर प्रिये,
जीने दे केवल दो दिन ही
मत रोक मृत्यु की राह प्रिये।

बस जीवन में थी चाह यही
पा सकूँ तुम्हें अंतिम क्षण में,
यह अभिलाषा भी पूर्ण हुई—
है मिली शांति अंतिम क्षण में।

पा तुम्हें पास अपने इतने,
अब मृत्यु मुझे नहिं सालेगी,
ये रक्तिम कजरारी अंखियाँ—
लख मृत्यु दूर ही भागेगी।

है विनय यही अपनी तुमसे
मत छोड़ मुझे तुम जाना अब
जाकर इस निर्मम जग से मैं—
पा कहां सकूंगा तुमको कब?

अब मत रोको पीना मेरा,
मरने को हूँ 'निश्चिन्त' प्रिये,
पीने दे मुझको थोड़ी सी—
मत देख जाम की ओर प्रिये।

□

दर्पण

पगले, दर्पण मत देखा कर,
क्योंकि यह तेरी पोल खो देता है।
मन के अशुद्ध विचार,
चेहरे पर प्रकट हो जाते हैं।
ध्यान से देख, सच सामने है,
हां, अगर दर्पण देखने की इच्छा है,
तो पहले कुइच्छाओं का दमन कर,
मन में शुद्ध विचार भर ले,
सत्य का पालन कर,
फिर देख, दर्पण तेरा चेहरा भी,
विशुद्ध कर देगा।
कैसे भी भावों को चेहरे पर,
कभी मत आने दे,
'निश्चिन्त' रह, निर्विकार बन।
देखा नारियों को,
हर समय दर्पण देखती रहती हैं,
लेकिन,
मन के भावों को कभी भी
चेहरे पर नहीं आने देतीं,
उनका राज हमेशा राज ही रहता है।
अगर तू राज को राज ही,
रखने की शक्ति अर्जित कर ले,
तभी दर्पण देख,
अन्यथा, दर्पण तेरा राज खोल देगा। □

नारी समाज की निर्मात्री

यह सच है कि नारी ही
प्रकृति का अनुपम उपहार है।
वह कहीं माता तो कहीं पत्नी,
कहीं बहन है तो कहीं बेटी,
नारी ही सृष्टि का अभिन्न अंग है।
नारी सेवा, समर्पण, स्नेह,
प्रेम, वात्सल्य और ममता है।
नारी सम्मान की द्योतक है।
अब समय बदला और समाज ने ली अंगड़ाई,
परिवर्तन की लहर से अब,
नारी अवनति की ओर जा रही है।
धन कमाने की होड़ में अंधी दौड़ लगाना,
नारी के लिए अहितकर है।
स्वभाव में परिवर्तन से
सहजता और कोमलता का अभाव,
सन्तान निर्माण हेतु नारी सुखों का बलिदान,
इच्छाओं का दमन, संपूर्ण शक्ति लगाती है।
लेकिन आजकल
संपन्नता की सीढ़ी चढ़ने से
घर बिगड़ रहे हैं।
संतान अनाथों की तरह
और वृद्धजन असहाय होकर
जिंदगी जी रहे हैं।
नारी तू स्वयं सोच और निर्णय कर
सुख शांति और संतान के हित के लिए
पुनः त्याग भावना से 'निश्चिन्त' होकर
देश व समाज के भविष्य की दिशा तय कर।।

विलक्षण नारी तुम गृहलक्ष्मी हो

नारी तुम श्रद्धा हो, पूज्यनीय हो तुम,
प्रकृति का अनुपम उपहार हो तुम,
पुरुष के जीवन को सुंदर, सुव्यवस्थित
एवं अनुशासित करने वाली हो तुम।
सर्वांगीण गुणों का भंडार हो तुम।।

नारी सुंदर, कोमल व सहिष्णुता की मूरत हो
सहनशीलता से तूफानों और झंझाबातों को
निर्विकार, निर्लिप्त भाव से कष्टों को सह कर
परिवार को एकता के सूत्र में बांधती हो तुम।।

नारी तुम त्याग की मूरत हो, शक्ति का अमित भंडार हो तुम,
संतान के लालन पालन में, स्वयं के सुखों को त्यागकर,
अपने विलक्षण गुणों से, सृष्टि का आधार हो तुम,
नारी तुम परिवार की नींव राष्ट्र की नौका की पतवार हो तुम।

मां बनकर संतान की शिक्षा दीक्षा की संचालक हो,
तो पत्नी बनकर पति को आत्मिक, मानसिक, शारीरिक सुखदाता हो,
नारी कर्तव्यपरायण हो, परिवार का केन्द्र बिंदु हो तुम,
परिवार को स्वर्ग बनाती हो,
अभावों में सुख शांति का कमल खिलाती हो तुम।।

शिक्षा हो या समाज सेवा, युद्ध भूमि हो या कला क्षेत्र,
विज्ञान हो या साहित्य, तुम हर क्षेत्र में सर्वोत्तम श्रेष्ठ हो,
नारी तुम घर की गृह लक्ष्मी हो, पूज्यनीय हो पूर्णशीला हो।
अपनी अंतर दृष्टि से सृष्टि को सुखी समृद्ध बनाती हो।।

□

नारी की वेदना

आज के सामाजिक परिवेश में
किसी ने भी नहीं जाना
नारी की वेदना को।
सभी ने पीड़ा दी है नारी को,
विशेषकर नारी ने ही छला है नारी को,
क्यों ऐसा होता है नारी के साथ–
सोचा है कभी किसी ने नारी व्यथा को।
क्या नारी चाहती है कि उसे
कुलक्षणी, कुल्टा, चरित्रहीन कहा जाय
समाज द्वारा, अपनों द्वारा।
नहीं, फिर भी न चाहते हुए भी–
उसे इन्हीं नामों से पुकारा जाता है।
नारी के चरित्रहीन होने का
मुख्य कारण समाज ही तो है
उसकी अस्मिता की धज्जी
समाज के दरिन्दे ही तो उड़ाते हैं।
और वही समाज उसे नाम देता है
कुलक्षणी, कुल्टा, चरित्रहीन का।
नारी स्वयं चिंतित है कि वह
कैसे बचा पाए अपनी लाज को।
लेकिन फैशन की दौड़ में
धनवान बनने, आर्थिक विषमतायें मिटाने
और नाम कमाने की दौड़ में ही तो
नारी स्वयं लुटाती है अपनी अस्मिता।
आज की नारी इन्हीं कुछ कारणों से
'निश्चिन्त' नहीं है जीवन बिताने को।

निर्मोही को

समझा था कभी तुझे अपना,
पर तू निकली केवल सपना।
किया था तुझको मैंने प्यार–
लगा अब लेकिन सब बेकार।।
तृषित स्मृतियां एकत्रित कर,
लगा फिर झरने सावन ज्यों !
हृदयांतर के मध्य न जाने–
है फंसी मधुर स्मृतियां क्यों
हृदय में बसी प्रीति की लड़ी,
रही अब व्यर्थ वही पर पड़ी !
देख जब मुझे रही तू खड़ी–
बिखरी मधुर स्वप्न की लड़ी।।
शुप्त ही रहे हृदय की व्यथा,
गुप्त ही रहे प्रीति की कथा !
रहूँ मैं जीवन में 'निश्चिन्त'
कहूँगा अब मैं तुमसे किन्तु,
न अब मुझसे कुछ कहना,
सह चुका जो कुछ था सहना !
समझा था तुझे कभी अपना–
पर तू निकली केवल सपना।।

बंधन

तेरे मेरे बंधन क्या टूटे
मुझसे मेरी दुनिया ही
अलग हुई।
भटकता रहता हूँ रात–दिन
अटूट सहारे के लिए।
बेसहारा होकर
प्यार खोजता हूं पर
छलावा मिलता है।
मन बेचैन रहता है
तुम्हें फिर पाने को।
पर लगता है
क्या टूटे बंधन फिर जुड़ पायेंगे।
अगर जुड़ भी गए तो
मन में गांठ रह जायेगी।
तेरे मेरे बंधन क्या टूटे
मेरी खुशियां ही मुझसे अलग हुईं।

□

सूना सावन

सखी री हाय मोहे, सावन सूना लागे।
लख रिमझिम बरखा को, मन में तड़फन जागे।
बलमा बसे परदेश, करूं अब किससे बातें,
लागत नाहीं मेरो मन, कटे नहिं दिन औ रातें
बीतत नाहिं विरह में, ये दिन लगे अभागे।
सखी री हाय मोहे, सावन सूना लागे।
तपन मेरे मन की अब, बढ़ती–बढ़ती जाये
पिया मिलन की आशा, धूमिल होती जाये,
खुशियां प्यासे मन की दूर–दूर ही भागें
सखी री हाय मोहे, सावन सूना लागे।।
चारों ओर जल सागर हूं, फिर भी मैं प्यासी
बिन तुम साजन मुझ पर, छाई रहत उदासी
आकर प्यास बुझा दो, सोए अरमां जागे
सखी री हाय मोहे, सावन सूना लागे।।
घुमड़–घुमड़ जब मेघा, गरज–गरज दहलाए,
घनी अंधेरी रैना, है मन मेरा घबराए।
'निश्चिन्त' बाट जोहती, फिर भी क्यों डर लागे
सखी री हाय मोहे, सावन सूना लागे।।

◻

बीती बतियाँ

मुझे न दोषी ठहराओ, मैं बड़ा मजबूर था,
प्रेम के हाथ लुट गया, दिल बड़ा कमजोर था।
अपने कोमल भावों का, तुझे बहुत ध्यान है,
किसी के तृषित ह्रदय का क्या तुझे कुछ भान है
मुझे ठुकरा लगा लोगी, तुम मरहम घावों पर–
मेरे रिसते घावों का, अब तुझे क्या ज्ञान है,
बिसरी उस मुलाकात को, मत याद दिला ऐसे,
सुलगती अंतर आग को, मत हवा लगा ऐसे,
कहीं भभक कर न ले ले, तुझे लपेट मैं अपनी–
सोये हुये उन सपनों को, हाय मत जगा ऐसे।
भूल गई आम तले जब, वो वायदा किया था,
उम्र भर साथ देने का संकल्प लिया था,
निर्धन व धनवान का जग, साथ न निभाने देगा
सुन तूने ही तो मुंह पर, हाथ रख दिया था।
कहां छुप गयी थी तब वे, परंपराएं कुल की,
बगीचों में फुदकती थी, मेरे संग बुलबुल सी
तनिक तो तरस खाओ अब, बेबसी पर मेरी
हँसी तो मत उड़ाओ हाय, मेरे अश्रुओं की।
पूछता हूँ तुमसे क्यों यह, नाटक किया था,
'उर मिला' कर उर में, अजीब दर्द दिया था,
डरती हो बदनामी से, धनी पति को पा अब
निर्धन के अरमानों से खिलवाड़ क्यों किया था।
डोली में जाती देख तुझे, दिल चकनाचूर था,
मुझे न दोषी ठहराओ, मैं बड़ा मजबूर था,
भूलकर बीती बतियां, अब तो मैं 'निश्चिन्त' हूँ
तेरे ही हाथों लुट चुका दिल बड़ा कमजोर था।

□

सूखी अंखियाँ

अच्छा हुआ जो तुम मुझे, तब मायूस कर गये,
मेरी सूखी अंखियों को, आंसुओं से भर गये।
न तुम मिलते हमें तो बस, खुशी राज ही रहती,
दिल की धड़कनें भी हाय, कुछ अपराध ही करती,
तुम्ही ने जिंदगी में आ, सिखला दिया जीना--
नही तो जिंदगी अपनी, उम्रभर आह ही भरती!
मगर ये दिन खुशी के सुन, जल्दी ही वीते थे,
मधुर मदमस्त अखियों के हमीं जाम पीते थे
न वाफिक थे 'शराव' जाम साकी के नाम से--
न कुछ दिल में तमन्ना थी, न कुछ अरमान रीते थे
न तुम ठुकरा मुझे यूं तव, अकेली चली जातीं,
न चलता पता गम का और, न तुम याद ही आतीं,
तुम्हीं ने सिखला दिया दिले, गमगीन हो जाना
न गम ही घेरता आकर, न वरसात ही होती।
वाकिफ तुम्हारी याद ने, साकी से कर दिया,
साकी न गमे जाम को, फिर मय से भर दिया,
'साकी' 'शरावे जाम' ही अब जिंदगी अपनी--
तड़फती जिंदगी को इसने, आवाद कर दिया।
अच्छा हुआ जो तुम मुझे, तव मायूस कर गये,
सहकर तेरे जुल्मों सितम, हम खामोश रह गये
गमे दिल की आवाज सुन गीतों में तू 'निश्चिन्त'
मेरी सूखी अंखियों को आंसुओं से भर गये।

हो गई है उनसे नफरत

हो गई है उनसे नफरत, कहने की बात है,
रूठे हुए दिल को ही, बहलाने की बात है।
सोचा था दिल लगाकर, लूटेंगे हम मजा,
दिल टूक टूक करके अब, हम पा रहे सजा।
बिछुडन के शोक में शक्ल पर, बज रहे हैं बारह
पूछती हूँ जानम तुमसे क्यों, दे रहे हो सजा।।

रह रह के याद आती है, बीते उन पलों की,
महकन शबनमी गुलिस्तां की, बातें दोनों दिलों की,
उनका रूठना, मचलना अब, लगता सिर्फ बेकार है—
कर करके पुरानी यादें दिल, मिलन को बेकरार है।।

वो भूल बैठे हैं, हमको, जाने थी क्या खता,
हो चुके हैं हाय मेरे, अब अरमान लापता।
हद हो गई है जानम, अब तो बेकरारी की—
कटती नहीं है शब्बेगम, हाय इन्तजारी की।।
हो गई है उनसे नफरत, कहने की बात है,
रूठे हुए सनम को तो अब, मनाने की बात है।

□

प्रेयसि को

लख खिड़की से तुझको बाले,
तेरे केश घनेरे काले
नयनन मध्य बसी छवि तेरी
कैसे मन अब उसे संभाले।

देख ये अनुपम रूप सलोना,
हुआ है दिल पर जादू टोना
रूप तुम्हारा पास बुलाए
हाय ऐसे मुझे छलो ना।

न होती मध्य 'जगत' दीवार,
यनती तव प्रेममयी मीनार
चिंता करता हृदय विदीर्ण
करूं अब कैसे इसको पार !

ऐ भावमयी सुमधुर बाला
उदित हुआ है भाव निराला
नयनन के संकेत से मुझे–
वता दे पंथ मिलाने वाला !

इसी आशा से हूँ 'निश्चिंत'
न हो अब प्रेम नाट्य का अंत
अगर तुम्हारा भी होगा शुभ साथ
बनेगा इन्द्र धनुष सा पंथ !

◻

सवेरा क्यों होता है

छोटे बच्चे ने पूछा माँ से, सवेरा क्यों होता है,
मां बोली बेटे मैं बताऊँ सवेरा यों होता है।
जगत का अंधेरा मिटाने को, सूरज उगता है,
परम पिता परमेश्वर को, जो कोई भी नमन करता है।
विषय भोगों में रमे अन्तःकरण, में जमे कुसंस्कारों को
जप तप कीर्तन और सत्संग से, अंतःकरण शुद्ध होता है।।
इसलिए ही तो माँ बोली बेटे, रोज सवेरा होता है।।
माता पिता गुरूजनों का चरण स्पर्श करने को,
खुली हवा में बगीचों में, व्यायाम करने को
भूत भविष्य की चिंताएं त्याग, वर्तमान में ही जीने को
धन से आशक्ति, लालसा औ भूख मिटा, संतोषी बनाता है।
इसलिए ही तो मां बोली बेटे, रोज सवेरा होता है।।
रोगी 'पागल' पापी हर सभी पुरुष, भगवत् स्वरूप होता है,
गुरूजनों सत्पुरुषों को आदर से, अहंकार का नाश होता है
आसुरी, प्रवृति का बहिष्कार करने से, सुकर्मों को अपनाकर–
संतोष परम् सुखम् का भाव ह्रदय में स्वतः उदित होता है।
इसलिए ही तो मां बोली बेटे, रोज रोज सवेरा होता है।।
अप्राप्य का लोभ त्याग कर, अनागत से भयभीत न होकर
निर्मल मति, सत्यवादी वन, मन से विषयों का चिंतन त्यागकर
आज के दिन सत्यकर्म करके, अपनों का भार वहन करने को–
यही सब अच्छी शिक्षाएं लेने को ही तो सवेरा होता है।।
इसलिए ही तो मां बोली बेटे, रोज सवेरा होता है।।

छोटे बच्चे

सभी छोटे बच्चे, हैं गुणों की खान,
सद्भावना, भोलापन और मृदु मुस्कान
निःस्वार्थ प्रेम लेकर ही इस जग में–
अवतरित हो जग की, ये हैं बढ़ाते शान।

हम भरते उनमें हिंसा, घृणा और तनाव,
राग द्वेष देता है उन्हें नकारात्मक प्रभाव
बड़े होकर दिखते हैं, वे अप्रसन्न बेचैन–
हम पाते हैं उन बच्चों में प्रेम का अभाव।

हमें बढ़ानी हैं उनमें, गुणवत्ता जीवन की,
हमें सिखानी है उनको, खुशियां जीवन की
निष्क्रियता, हिंसा और निराशा मिटाकर–
हमें लानी है खुशियां ही बच्चों के मन की।।

अनुशासन लगता है कठिन, पर है आसान,
आदत डालो, पालन कराओ उन्हें अनुशासन
हर कार्य अभ्यास से होगा बहुत आसान–
'निश्चिन्त' हों बच्चे तो फिर छू लेंगे आसमान।

□

पुस्तकें

व्यक्तित्व विकास एवं संपूर्णता
पूर्ण करती हैं पुस्तकें।
समाज में धाक जमाने, सम्मान पाने
और स्मार्ट बनने के लिए भी
मददगार हैं पुस्तकें !
मनोरंजन के साथ नीरसता भगाने
और तनाव मिटाने में भी,
रामबाण हैं पुस्तकें।
समस्याओं का समाधान,
कुंठाओं को भगाने के उपाय के लिए भी
कारगर हैं पुस्तकें।
बौद्धिक विचार विनिमय,
साक्षात्कार एवं परीक्षा के लिए भी
शक्ति प्रदान करती हैं पुस्तकें।
किचन, ड्रेस फैशन, मनोविज्ञान
ऑफिस, होम मैनेजमेंट का भी
ज्ञान दिलाती हैं पुस्तकें।
धर्म, समाज एवं संस्कृति से भी
अवगत करांती हैं पुस्तकें।
पति बसे परदेश, तो बिरहन पत्नी को
'निश्चिन्त' बनाती हैं पुस्तकें।

□

संग्रह

संग्रह की अनावश्यक जिम्मेदारी
मानव क्यों उठाता है?
व्यर्थ में लड़ने का झंझट–
हर कोई क्यों मोल लेता है?

देखा पक्षियों को
सुबह से शाम तक
दाना पानी चुगते रहते हैं–
लेकिन संग्रह नहीं करते हैं।
खुराक उतनी ही बीनते हैं,
जिनती वे पचा सकते हैं,
जितने में शरीर समा सके–
घोंसला भी उतना ही बनाते हैं।
लेकिन मानव बड़ा ही लालची है,
दूसरे के घोंसले छीनता है, अपना बनाने को
दाना पानी भी छीनता है, संग्रह करने को।
फिर भी जाता है खाली हाथ, जैसा आया था।
अगर प्रसन्न रहना है,
'निश्चिन्त' रहना है–
तो पक्षियों से सीखो
प्रसन्न रहने की कला।

आर्थिक विकास

मानव ने आर्थिक विकास की अंधी दौड़ में
वन जंगल बरवाद कर दिये
नदियों का जल प्रवाह थम गया—
और प्रदूषित होकर गंदे नालों में परिवर्तित हो गया।
विकास के चमकीले पंखों ने
शहरों नगरों को गंदी बस्तियां बना दिया
लाखों लोगों को बेघर बना दिया।
प्रकृति का प्रकोप कहर ढाने लगता है,
तो पर्यावरण याद आता है।
तत्कालीन स्वार्थ साधन के चक्कर में
मानव अपना भविष्य दांव पर लगा देता है।
यह प्रलय ईश्वर प्रकोप नहीं
स्वयं मानव द्वारा आहूत है।
विकास की अंधी डरावनी दौड़ में हमने
प्राकृतिक संसाधनों का दोहन किया है,
प्राकृतिक रक्षा कवचों को भी हमने
जानबूझ कर स्वयं ही तोड़ा है।
अतः शोषण की स्वार्थवृत्ति त्याग कर
प्रकृति माता का दोहन त्याग कर
उसकी रक्षा और विकास करके ही
मानव को सुख शांति, समृद्धि मिलेगी
तभी मानव वास्तव में 'निश्चिन्त' हो पायेगा।

□

रक्त

रक्त कितना महंगा है।
एक अबला
पति के आपरेशन को
रक्त मांग रही है
लेकिन उसे
कोई रक्त नहीं देता।
क्योंकि रक्त बहुत ही महंगा है।
थोड़ी देर में ही अबला
पतिविहीन हो गयी
क्योंकि रक्त नहीं मिला था।
रक्त बहुत ही महंगा है।
जब वह निर्जीव पति के शव
को रिक्शे पर लेकर जा रही थी,
देखा सड़क पर मनों रक्त
बिखरा पड़ा था, शायद कहीं
साम्प्रदायिक दंगा हो गया था।
सभी मरने मारने को उतावले थे।
किसी की जान बचाने को
रक्त महंगा है।
लेकिन आपस में मारकाट को
रक्त की कोई कीमत नहीं।

बताओ मैं क्या करूं

हे मन भूल जा अतीत को
छोड़ दे सपने देखना
आने वाले भविष्य के।
अरे मन मेरे वर्तमान
को संभलने दे
भविष्य खुद ही
संभल जाएगा।
अगर आज अच्छा बीता तो
बीता हुआ कल और आने वाला कल
स्वयं ही अच्छा हो जाएगा।
पर बताओ मैं क्या करूं?
मेरा मन मेरी बात ही नहीं सुनता
मुझे बीते कल और आने वाले कल
में ही उलझाए रहता है।
बड़ी मुश्किल से
अतीत को तो भूल जाता हूँ
लेकिन भविष्य के सपने
मुझे वर्तमान में भी
चैन से जीने नहीं देते।
बताओ मैं क्या करूं?
मैं 'निश्चिन्त' होना चाहता हूँ
लेकिन भविष्य की
चिंताएं ही मुझे जीने नहीं देतीं
बताओ मैं क्या करूं?

सच और झूठ का अंतर

सच–झूठ का खेल भी बड़ा निराला है,
सच एक घटना है, तो झूठ विचारों का प्रवाह है।
क्योंकि विचारों के प्रभाव प्रतिपल बदलते हैं–
सो झूठ हमेशा पकड़ा ही जाता है।। १।।

झूठ मुखौटा है, झूठ द्वन्द है, झूठ झूठा आवरण है,
यह आवरण बड़ा डरावना, किंतु आकर्षक दिखता है।
आकर्षक इसलिए कि झूठा व्यक्ति–
बड़े अलंकारिक व चालाकी से बात प्रस्तुत करता है।।२।।

सच बोलने वाले पूरे आत्मविश्वासी होते हैं,
झूठा व्यक्ति स्वयं को व औरों को धोखा देता है।
अर्थात् द्वन्द, अंदर से अशांत, और बाहर से बेचैन–
साथ ही झूठे व्यक्ति गहरे मनोरोगी भी होते हैं।।३।।

झूठ कागज का फूल है, तो सच गुलाब का पुष्प,
कागज के फूल में सुरभि ताजगी कहां होती है।
जो ओस से सने गुलाब के पुष्प में है–
यही सब सच और झूठ में प्रामाणिक अंतर है।।४।।

होश पूर्वक, सजगता, सतर्कता ही वास्तविक सच्चाई है
अतः सच के सुनहरे परिधान से आवृतकर
जीवन को सुखमय और 'निश्चिन्त'–
बनाने का सदैव प्रयास शुभ मंगलमय संकल्प है।।५।।

रिश्ते

इस कलयुगी युग में, रिश्ते बेमानी हो गए हैं
सभी दुख दर्द सहकर संतान को
चलने लायक स्वयं कमाने लायक बनाया
उसी मां को बच्चे बोझ समझते हैं।
पत्नी पति सेवा में, सारा जीवन सर्वस्व
समर्पित कर देती है, संपूर्ण इच्छाएं दमन कर देती है।
उसी पत्नी को पति, नौकरानी, भोग्या व व्यर्थ की
परेशानी समझ तलाक दे देता है।
पत्नी जो पति को परमेश्वर समझ
पूजा, सेवा समर्पण करती है
वही पत्नी रिश्ते बिगाड़कर दहेजरूपी
हथियार से पति को जेल भिजवा देती है।
बेटा बाप को तो भाई भाई को मार रहा है
किसी ने सोचा है इसका कारण
हां इसका कारण है पश्चिमीकरण, आधुनिकता
लोभ, लालच और भौतिकतावाद !
पश्चिमीकरण की दौड़ में नवयुवक
भारतीय संस्कृति को भुलाता जा रहा है,
सुसंस्कार, आपसी प्रेम भाव, आदर मिटाकर
रिश्ते बनने के बजाय बिगड़ते जा रहे हैं
कोई भी 'निश्चिन्त' नहीं है रिश्ते निभाने में
तभी तो रिश्ते बेमानी होते जा रहे हैं।

सत्य को स्वीकारो

एक अमिट सत्य है जीवन व मरण
जो जन्मा है वह मरेगा भी
चाहे साधारण मानव हो या पुण्यात्मा
ईश्वर ने जन्म दिया है, प्रेम सेवा समर्पण हेतु
लेकिन अज्ञानवश मोह–माया, लोभ लालच
एवं द्वेष भाव में जीवन बिता देता है मानव !
मानव शरीर से नहीं मन से
अपंग हो जाता है, सत्य को स्वीकारता नहीं,
सत्य से दूर भागता रहता है।
हर किसी के दुख दारिद्र एवं परेशानी को,
अपना समझ उसे दूर करने का प्रयास करो–
जिसका फल उन्हें तो मिलेगा ही,
तुम्हें भी मोक्ष का पथ आसान हो जाएगा।
ईश्वर जिसने हमें मानव शरीर दिया है
सदैव स्मरण करो, पूजा अर्चना करो,
विशेष कर दीन दुखियों की सेवा करो
सहयोग करो, उन्हें अपना ही समझो
क्योंकि दीन दुखियों में भी ईश्वर विराजमान है
सेवा भाव, समर्पण से तुम्हारा जीवन सार्थक होगा
'निश्चिन्त' सहस्र वर्ष का जीवन बिताओगे
सो बंधुओ इस सत्य को स्वीकार करो।

प्रवचन

पुराने जमाने में लोग, छायादार पेड़ के नीचे,
आराम से बैठकर गीता, रामायण बड़े ध्यान से
वीर पुरुषों की गाथाएं सुनते थे।
अब इस आधुनिक युग में
बड़े–बड़े पांडालों में, वातानुकूलित मंच पर,
बैठकर संतजन प्रवचन देते हैं।
सादा जीवन उच्च विचार अपनाइये
निंदा हमारे चित्त को मलिन कर देती है।
वहीं भक्त महिलाएं, पड़ोसियों की निन्दा,
तो पुरुष राजनैतिक उलझनों में उलझे हैं।
कुछ संभ्रांत महिलाएं मोबाइल फोन पर
सुन रही हैं गाना, जिया लागे न सैया तेरे बिना।
कुछ देर में बड़े जोर का शोर हुआ
सुरक्षाकर्मी दौड़े, क्या हुआ, क्या हुआ?
हाय मैं लुट गई, बरबाद हो गई
कोई मेरा पचास हजार का
सोने का हार झपट कर ले गया।
यह है आधुनिक युग का प्रवचन
यहां कोई 'निश्चिन्त' नहीं है
प्रवचन सुनने तक के लिए।

❑

अमूल्य जीवन

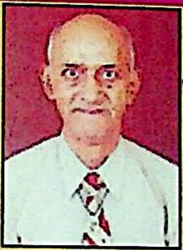
जीवन बड़ा अमूल्य है
इसका अर्थ समझ कर लाभ उठाओ
बाधाओं से मत घबराओ
उनका प्रतिरोध करो, सुख पाओ
सुख का अनुभव तभी मिलेगा
जब दुख को गले लगाओगे
मुसीबतों के मारों के जब तुम
साथी, सहयोगी बन जाओगे
हार का दामन छोड़कर देखो
सदा विजय पताका फहराओगे
निर्धन के मन में ईश्वर है
उसकी मदद से ईश्वर दर्शन पाओगे
जीवन का सत्य अर्थ समझकर ही
अपने कर्तव्य पथ पर बढ़े चलो
समाज सेवा करके धर्म परायण होकर ही
सफल मानव जीवन का लाभ उठाओगे।
तभी तुम 'निश्चिन्त' जीवन बिता पाओगे।

□

हँस कर जीना सीखो

होनहार बलवान है मानव इसे स्वीकारो।
कितना ही प्रयास कर पगले
तू तोड़ नहीं पाएगा काल चक्र,
नियत के ताने बाने को
इसे देख अधीर मत हो
हंसता रह, मुस्कराता रह।
सब विपदाएं दूर हो जाएंगी
जीवन नैया पार लगाता रह।
होनी को कोई टाल नहीं पाया
यह अटल सत्य है, इसे स्वीकार
अदृश्य शक्ति का खेल है यह
फिर क्यों होता पगले अधीर
आज दिन बुरे सही, पर
कल को तो अच्छे आएंगे ही !
जिस तरह रात के बाद सवेरा
उसी तरह दुख के बाद सुख आएगा
चिंता मत कर 'निश्चिन्त' रह
प्रसन्न रह, हंसकर जीना सीख !
मानव हंसकर जीना सीखो।

□ □



सत्यपाल "निश्चिन्त"

पूरा नाम	:	सत्यपाल सिंह वर्मा
जन्म तिथि	:	05 फरवरी, 1943
जन्म स्थान	:	गोंडा, जिला अलीगढ़ (उ०प्र०)
शिक्षा	:	हाई स्कूल 1959, इन्टरमीडिएट 1968, स्नातक 1976, पंजाब यूनिवर्सिटी, चण्डीगढ़
रुचि	:	हिन्दी साहित्य पढ़ना एवं लेख, कहानी, लघुकथा व कविता लिखना।
सम्प्रति	:	सेवानिवृत्त, सेना से फिर भारतीय स्टेट बैंक से।
सेवा काल	:	14 दिसम्बर सन् 1962 से ३१ मई 1979 तक भारतीय सेना में हवलदार लिपिक के पद पर। 16 फरवरी 1981 से 31 मार्च 2001 तक भारतीय स्टेट बैंक बरेली में सेवारत, वरिष्ठ सहायक के पद से सेवानिवृत्त।
रचना कार्य	:	लेख, कहानी, कविताओं का लेखन। दो कहानी, 8-10 कविताएं 1970 में पंजाब केसरी जालंधर, एकता संदेश जगत हिन्दी मासिक दिल्ली में प्रकाशित। जनवरी 2006 से पुनः लेखन आरम्भ। कविता एवं लेख जाहनवी हिन्दी मासिक दिल्ली में मई 2006 से हर माह प्रकाशित एवं भविष्य में प्रकाशन की पूर्ण आशा। अन्य पत्रिकाओं - कर्मनिष्ठा, साहित्य जनमंच, सरस्वती सुमन, ताप्ती लोक, जगमग दीप ज्योति, नारी अस्मिता, आश्वस्त, सरोपमा, पंखुड़ी, जर्जर कश्ती, शुभ तारिका, अर्धांगिनी तथा काजल में कविताऐं व लघुकथाऐं प्रकाशित। सम्पादक सुमति कुमार जैन, अलवर (राजस्थान) द्वारा सम्पादित काव्य संग्रह निर्झर में दो कविताऐं प्रकाशित एवं कहानी संग्रह में दो कहानी प्रकाशित।
आत्म कथ्य	:	जैसे भी विचार मन उठते हैं, कलम के सहारे कागज पर उतार देता हूँ। वही शब्द कविता, कहानी एवं लेख का रूप ले लेते हैं, इसी बहाने हिन्दी साहित्य की प्रगति में योगदान भी हो जाता है और आत्म सन्तुष्टि भी हो जाती है।
सम्पर्क	:	एफ.-608, पार्श्वनाथ प्रेस्टिज, सेक्टर 93-ए, नोएडा जिला गौतमबुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश) - 201301 दूरभाष : 0120-4232364

उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद